Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2022 SHISRRJ | Volume 5 | Issue 3 | ISSN : 2581- 6306

नीतिवाक्यामृतम् में वर्णित षाड्गुण्य : एक परिचय

अंजू देवी
संस्कृत विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश।

Article Info
Volume 5, Issue 3
Page Number : 25-29

Publication Issue :
May-June-2022

Article History
Accepted : 15 May 2022
Published : 30 May 2022

शोध सारांश– सोमदेवसूरि ने अत्यन्त विस्तृत, वैज्ञानिक, तथा कुटनीतिक रूप से षाड्गुण्य की व्याख्या की है। इन्होनें वैदेशिक सम्बन्धों को अनुकूल बनाने के लिए, अपने राज्य की सुरक्षा के लिए तथा राज्य में सुख और समृद्धि के लिए इन नीतियों का प्रयोग आवश्यक माना है। इस प्रकार इनके षाड्गुण्य नीति का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है, कि प्रजा की योगक्षेम की समुचित व्यवस्था को बनाये रखते हुए निरन्तर राज्य की वृद्धि करना तथा राज्य के शत्रुओं को हानि पहुँचाते हुए राज्य का विस्तार करना है।

मुख्य शब्द– नीतिवाक्यामृतम्, वैदेशिक, षाड्गुण्य, कुटनीतिक, वैज्ञानिक, राज्य, साहित्य।

षाड्गुण्य नीति पर विभिन्न आचार्यों ने अपने–अपने विचार दिये हैं जैसे– शुक्राचार्य, चाणक्य, कामन्दक, इत्यादि। इसी परम्परा को आगे बढ़ाते हुए सोमदेवसूरि ने अपने सफलतम् ग्रन्थ 'नीतिवाक्यामृतम्' में षाड्गुण्य पर विचार करते हुए लिखा है कि राजाओं की सफलता उनकी विफलता षाड्गुण्य नीति के उचित अथवा अनुचित प्रयोग पर निर्भर करता है। जो राजा षाड्गुण्य नीति का उचित प्रयोग करता है वह सफलता प्राप्त करता है। इसके विपरीत आचरण करने वाले राजा का नाश होता है। आचार्य सोमदेवसूरि ने कहा कि धधकती हुई प्रतापाग्नि रूप तृतीय नेत्रवाला, परम ऐश्वर्य का उपयोग करता हुआ राष्ट्र के लिए कण्टक स्वरूप शत्रु रूप दानवों का नाश करने के लिए उद्यत, विजय की कामना करने वाला राजा पिनाकपाणि महादेव का ही स्वरूप होता है।
यथा–

''प्रवृद्धप्रतापतृतीय लोचनानलः परमैश्वर्यमातिष्ठभानो राष्ट्रकण्टकान् द्विषद,
दानवान् छेत्तुं यतते विजिगीषुभूपतिर्भवति पिनाकपाणिः।''
(षाड्गुण्यसमुद्देश्य वार्ता– 19)

यदि शत्रु से राजा अपने को शकितशाली अनुभव करता है, तो बुद्धिमान राजा को सन्धि कर लेनी चाहिए, यदि अपने को शक्तिसम्पन्न समझे तो विग्रह कर लेना चाहिए। यदि विजिगीषु यह समझता है कि न शत्रु मेरा कुछ कर सकता है, और न मैं ही शत्रु को कुछ हानि पहुँचा सकता हूँ, तो ऐसी स्थिति में आसन का सहारा लेना चाहिए। अपनी शक्ति, देश, काल, आदि गुणों के अधिक होने और परिस्थिति अनुकूल होने पर यान कर देना चाहिए। शक्तिहीन राजा को सदैव संश्रय का ही सहारा लेना चाहिए। यदि कहीं से सहायता की आशा हो तो द्वैधीभाव को अपनाना चाहिए। इन छः गुणों की व्याख्या विभिन्न आचार्यों द्वारा भी की गयी है। इन्ही कड़ी को आगे बढ़ाते हुए आचार्य सोमदेवसूरि ने इन छः गुणों को इस प्रकार बताया है–

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

''सन्धि–विग्रह–यानासनसंश्रय द्वैधीभावाः षाड्गुण्यम्''

(नीतिवाक्यामृतम्, समुद्देश्य 29, वार्ता–42)

अर्थात् सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय तथा द्वैधीभाव इन छः गुणों के प्रयोग से राज्य के पारस्परिक सम्बन्ध निश्चित होते हैं। जिनका वर्णन इस प्रकार है–

(1) सन्धि– जब राजा अपनी दुर्बलता के कारण शक्तिशाली राजा से धन आदि देकर उससे मैत्री करता है तो उसे सन्धि कहते हैं। मानवधर्मशास्त्र में आचार्य मनु ने सन्धि की परिभाषा पर प्रकाश नहीं डाला है। शुक्र के अनुसार जिस क्रिया द्वारा बलवान शत्रु राजा मित्र बन जाय वह क्रिया 'सन्धि' है।

कौटिल्य ने सन्धि की परिभाषा देते हुए कहा है कुछ शर्तों के आधार पर दो राजाओं में जो मिलता एवं सम्बन्ध स्थापन क्रिया होती है, उसे सन्धि कहते है।

आचार्य सोमदेवसूरि ने सन्धि गुण का आश्रय लेने वाली परिस्थितियों का उल्लेख करते हुए कहा है कि 'यदि कोई राजा अपने शत्रु राजा से हीन बल है और यह समझता है कि सन्धि कर लेने पर शत्रु सन्धि के पणों का उल्लंधग नहीं करेगा, ऐसी परिस्थिति में उसे सन्धिगुण का आश्रय लेना उचित होगा।

''समाभिजनः सहजशत्रुः।''

(नीति0,समु0 29, वार्ता– 32)

जब विजिगीषु शक्तिशाली हो तो उसे शत्रु राजा से आर्थिक दण्ड देकर सन्धि कर लेनी चाहिए।

''अनाश्रयो दुर्वलाश्रयो वा शत्रुरूच्छेदनीयः।''

(नीति0सभु0 29 वार्ता 31)

प्रबल सैनिकों वाले शत्रु के साथ युद्ध न कर सन्धि ही करना उचित होता है, इसके साथ ही दो समान शक्ति वाले राष्ट्रों को सर्वथा सन्धि का ही आश्रय लेना चाहिए अन्यथा यदि दोनों में युद्ध छिड़ता है तो दोनों ही राष्ट्र नष्ट हो जायेंगे। आचार्य सोमदेवसूरि के ये विचार कौटिल्य के विचार से बहुत मिलते हैं।

संक्षेप में सोमदेवसूरि के अनुसार सन्धि का आश्रय लेने का वहीं अवसर है जब अपने सबल शत्रु को किसी न किसी प्रकार से शक्तिहीन बनाया जा सके तथा स्वयं को सबल बनाया जा सके।

2. विग्रह– षाड्गुण्य के द्वितीय भेद विग्रह का परिभाषा करते हुए आचार्य सोमदेवसूरि लिखते हैं कि –

''अपराधो विग्रहः।''

(नीतिवाक्यामृतम्, समुद्देश्य 29 वार्ता– 44)

अर्थात् किसी राजा का दूसरे राजा के प्रति अपराध करना विग्रह कहलाता है। अपकारो विग्रहः अर्थात् शत्रु का कोई अपकार करना ही विग्रह नाम से अभिहीत है। विग्रह का अर्थ है युद्ध अर्थात् युद्ध करने को ही विग्रह कहते हैं। इस नीति का अनुगमन राजा को तभी करना चाहिए, जब राजा शत्रु को निर्बल देखे और अपनी शक्ति के बारें में पूर्णतया आश्वस्त हो। विग्रह करने से पूर्व राजा को सभी बातों का विचार कर लेना चाहिए। अपने अभ्युदय की रक्षा करने वाला अथवा शत्रु से पीड़ित हुआ अच्छे देशकाल और सेना से युक्त होकर विग्रह करें। मनुस्मृतिकार आचार्य मनु के अनुसार– जब राजा अपने मंत्री आदि सम्पूर्ण प्रकृतियों को दान–मान आदि से खुश किये रहे और अपने को हस्ति कोषादि सेनाङ्ग से सम्पन्न समझे तो विग्रह करें। यथा–

''यदा प्रकृष्टा मन्येत सर्वास्त प्रकृतीर्भृशम्।
अत्युच्छ्रितं तथाऽऽत्मानं तदा कुर्वीत विग्रहम्।।''

(मनुस्मृति, अध्याय–7, श्लोक– 170)

शुक्र के अनुसार जिस कर्म द्वारा विशेष प्रकार से पीड़ित हुआ शत्रु अपने अधीन हो जाए, उस कर्म को विग्रह कहते हैं। जो कार्य श्रेष्ठ और दोनों लोकों में कल्याणकारी हो अर्थात् जिस विग्रह के द्वारा इस लोक और परलोक दोनों का कल्याण होता है, उसी का करना विद्वान् पुरूष के लिए मान है। विग्रह के तीन फल बतलाये

गये हैं– भूमि, मित्र और सुवर्ग। जब विग्रह से इन फलों की प्राप्ति होना निश्चय हो ऐसी दशा में ही विग्रह करना उचित होगा।

आचार्य सोमदेवसूरि ने विग्रह की परिस्थितों का वर्णन करते हुआ कहा है कि–

''मेघवदुत्थानं राजकार्याणामन्यत च शतोः सन्धिविग्रहाभ्याम्।''

(नीति0,समु0 29, वार्ता– 61)

जिस प्रकार बहुधा आकाश में अकस्मात बादल छा जाते हैं उसी प्रकार राजकार्य भी अकस्मात् उठ खड़े होते हैं, और किये जाते हैं किन्तु शत्रु से सन्धि और विग्रह सम्बन्धी कार्य सहसा नहीं, बल्कि विचार पूर्वक करना चाहिए। राजा जब हर दृष्टि से सर्वगुण सम्पन्न हो, उसका राज्य निष्कण्टक हो और विग्रह करने से उसके राज्य को कोई हानि नहीं हो रही हो, तभी विग्रह करना चाहिए। पराजित शत्रु पर पुनः आक्रमण नहीं करना चाहिए तथा शत्रु के मधुर वचनों पर कभी ध्यान नहीं देना चाहिए, क्योंकि वह कपटपूर्ण व्यवहार द्वारा विजिगीषु से मुक्ति प्राप्त करके फिर अवसर पाकर उसे नष्ट कर देता है।

3. आसन– सोमदेवसूरि के अनुसार शत्रु के प्रति द्वैधीभाव रख लेना ही आसन है– **''उपेक्षणमासनम्''**

(नीति0,समु0 29, वार्ता– 46)

इस परिभाषा के अनुसार किसी समय अथवा परिस्थिति की प्रतीक्षा में चुपचाप बैठे रहने को आसन गुण की संज्ञा दी गयी है। कौटिलीय अर्थशास्त्र के अनुसार आसन की परिभाषा भी इसी प्रकार ही है। 'उपेक्षजमासनम्' (अर्थशास्त्र अधिकरण– 1 प्रकरण 98–99) मनु ने आसन की व्याख्या में कहा है कि जिस समय राजा अश्वादि सवारी और मन्त्री सेना से हीन हो उस समय शान्ति से शत्रुओं को धीरे–धीरे शान्त करता हुआ बैठा रहे। आचार्य कामन्दक के अनुसार युद्ध के कारण शत्रु और जयशील की परस्पर सामर्थ्य नष्ट होती है तो उसको नष्ट न करके मौन बैठे रहना आसन कहलाता है। कामन्दक ने आसन के पाँच भेद विगृहासन सन्धायासन, प्रसंगासन, सम्भूयासन और उपेक्षासन बताया है। आसन गुण की परिभाषा में सोमदेव ने कौटिल्य द्वारा प्रयुक्त सूत्र का ही प्रयोग किया है सबल शत्रु को आक्रमण करने के लिए तत्पर देखकर उसकी उपेक्षा करना आसन है। सोमदेव ने इस परिस्थिति में इतना प्रतिबन्ध और लगाया है, कि ऐसी होने पर अपनी कुशलता होगी, ऐसा भी अनुभव हो तब 'आसन' गुण का आश्रय लेना उचित होगा।

4. यान– अभुच्चयौ यानम् अर्थात् चढ़ाई करना 'यान' कहलाता है। 'यान' का अभिप्राय वास्तविक आक्रमण से है। इस नीति को तभी अपनाया जाना चाहिए जब राजा विजय के निश्चिन्त हो। 'मनु' के अनुसार जब राजा मंत्री आदि सेना को यथार्थ प्रसन्नचित्त एवं शक्तिशाली समझे तथा शत्रु की सेना को हृष्ट–पुष्ट न देखे तो उस समय उसे शत्रु के ऊपर आक्रमण करना चाहिए। कौटिल्य ने एक राजा द्वारा दूसरे राजा पर आक्रमण करने को ही 'यान' बताया है।

आचार्य सोमदेवसूरि ने 'यान' की परिभाषा इस प्रकार लिखा है–

''अभ्युदयो यानम्।''

(नीति0,समु0 29, वार्ता– 45)

राजा द्वारा शत्रु पर आक्रमण किये जाने को 'यान' कहते हैं, अथवा शत्रु को अपने से अधिक शक्तिशाली समझकर अन्यत्र प्रस्थान को भी 'यान' कहते हैं। सोमेदेवसूरि ने यान की परिस्थिति का उल्लेख करते हुए यह बात स्पष्ट कर दी है कि विजिगीषु को शत्रु देश पर अभियान तभी करना चाहिए जब वह अतिशय गुणसम्पन्न हो, उसका देश पूर्णरूप से सुरक्षित एवं राष्ट्र–कण्टकों से शुद्ध हो–

''गुणातिशययुक्तो यायाद् यदि न सन्ति रावट्कण्टका
मध्ये, न भवति च पश्चात् क्रोधः।।''

(नीति0,समु0 29, वार्ता– 53)

अपने देश में सुरक्षा एवं सुव्यवस्था का अभाव है तो उसे शत्रु पर कदापि आक्रमण करने के लिए प्रस्थान नहीं करना चाहिए, अन्यथा अपने अधीन राष्ट्र का सम्यक परिपालन एवं परिरक्षण न करके दूसरे राज्य पर आक्रमण करने से उसी प्रकार मूर्खता होगी। जिस प्रकार की अन्धे का दूसरे अन्धे पर हँसना है। इसलिए अपने राष्ट्र की रक्षा करने के उपरान्त ही उसका पर राष्ट्र पर आक्रमण करना उचित है।

5. संश्रय– 'संश्रय का अर्थ विभिन्न विद्वानों ने किया है। एक विद्वान के अनुसार संश्रय का अर्थ बलवान का आश्रय लिए जाने से है। इस गुण के अनुसार राजा अपने आप राज्य को दूसरे के आश्रय में समर्पित कर देता है। आचार्य 'मनु' के अनुसार–

''यदा परवलानां तु गमनीयतमो भवेत्।
तदा तु संश्रयते क्षिप्रं धार्मिक बर्लिनं नृपम्।।''

(मनुस्मृति, अध्याय 7, श्लोक– 174)

अर्थात् जब शत्रु सेना के आक्रमण के विरूद्ध दुर्गो के रहने पर भी सुरक्षा न की जा सके तो उस राज्य को चाहिए कि किसी धार्मिक किन्तु बलवान राजा का आश्रय ग्रहण करें। परन्तु शुक्र के अनुसार ऐसे सबल मित्र का आश्रय लेना जिससे दुर्बल राजा भी सबल बन जाय आश्रय कहा जाता है।

आचार्य सोमदेवसूरि ने 'संश्रय' नामक 'षाड्गुण्य' को परिभाषित करते हुए लिखा है कि–

''परस्यात्मार्पणं संश्रयः।

(नीति0,समु0 29, वार्ता– 47)

अर्थात् बलिष्ठ शत्रु द्वारा आक्रमण किये जाने पर किसी दूसरे शक्तिशाली राजा का आश्रय प्राप्त करना अथवा शत्रु को आत्मसमर्पण करना 'संश्रय' है। निर्बल राजा को संश्रय गुण का आश्रय प्राप्त करने के लिए शक्तिहीन एवं व्यसन ग्रस्त राजा का सदैव त्याग एवं निषेध करना चाहिए क्योंकि जो राजा स्वयं अशक्त है उसका आश्रय लेना, उसका और उस राजा दोनों के नाश का कारण बनता है। सोमदेव के अनुसार सशक्त से भयभीत होकर अशक्त राजा का आश्रय लेना उसी प्रकार व्यर्थ होता है, जिस प्रकार हाथी से भयभीत होकर एरण्ड द्रुम का आश्रय लेता है–

''बलद्वयमध्यस्थितः शत्रुरूभयसिंहमध्यस्थितः करीव भवति सुखमाध्यः।''

(नीति0,समु0 29, वार्ता– 63)

6. द्वैधीभाव– द्वैधीभाव की व्याख्या करते हुए सोमदेवसूरि लिखते हैं कि–

''एकेन सह सन्धायान्येन सद्द विग्रहकरणमेकेन वा शत्रौ सन्धान पूर्व विग्रहो द्वैधीभावः।''

(नीति0समु0 29 वार्ता 48)

अर्थात् जब राज्य पर एक साथ दो शत्रु चढ़ाई कर दें, तब एक अपेक्षाकृत बलवान के साथ सन्धि करके अन्य पर चढ़ाई कर देना 'द्वैधीभाव' है। अथवा अकेले ही शत्रु से सन्धि करके अनन्तर विग्रह (युद्ध) करना 'द्वैधीभाव' है। इसके अतिरिक्त प्रथम पक्ष में सन्धि करते हुए विजय की इच्छा करना बुद्धि के आश्रित रहता है अर्थात् मन में सन्धि और विग्रह व विजय का विकल्प ही द्वैधीभाव है–

''प्रथमपक्षे सन्धीयमानो विगृह्यमाणो
विजिगीषुरिति द्वैधीभावो बुद्ध्याश्रयः।''

(नीति0,समु0 29, वार्ता– 49)

आचार्य मनु के अनुसार अपनी सेना को पृथक–पृथक गुलमो में विभाजित करना 'द्वैधीभाव' है–

''द्वैधीभावः स्वसैन्यान्यं स्थापयं गुल्मगुल्मतः।।''

(शुक्रनीति, अ0 4, श्लोक– 1070)

आचार्य सोमदेवसूरि ने बुद्धि आश्रित 'द्वैधीभाव' का उल्लेख करते हुए कहा है कि जब राजा अपने से वलिष्ठ शत्रु के साथ पहले मैत्री कर लेता है और फिर कुछ समय उपरान्त शत्रु का पराभव हो जाने पर उसी से युद्ध छेड़ देता है तो उसे बुद्धि आश्रित 'द्वैधीभाव' कहते हैं।

उपसंहार : उपर्युक्त विवेचनों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं, कि सोमदेवसूरि ने अत्यन्त विस्तृत, वैज्ञानिक, तथा कुटनीतिक रूप से षाड्गुण्य की व्याख्या की है। इन्होनें वैदेशिक सम्बन्धों को अनुकूल बनाने के लिए, अपने राज्य की सुरक्षा के लिए तथा राज्य में सुख और समृद्धि के लिए इन नीतियों का प्रयोग आवश्यक माना है। इस प्रकार इनके षाड्गुण्य नीति का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है, कि प्रजा की योगक्षेम की समुचित व्यवस्था को बनाये रखते हुए निरन्तर राज्य की वृद्धि करना तथा राज्य के शत्रुओं को हानि पहुँचाते हुए राज्य का विस्तार करना है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1	नीतिवाक्यामृतम्	सोमदेवसूरि
2	मनुस्मृति	मनु
3	अर्थशास्त्र	कौटिल्य
4	शुक्रनीति	शुक्राचार्य
5	कामन्दकीयनीतिसार	कामन्दक
6	नीतिवाक्यामृतम्	सोमदेवसूरि (व्याख्याकार सुन्दरलाल शास्त्री)
7	शुक्रनीति में राजंतन्त्र	डॉ0 रामप्रदेश पाठक
8	नीतिवाक्यामृतम् मे राजधर्म	डॉ0 शालिनी श्रीवास्तव
9	नीतिवाक्यामृतम्	सोमदेवसूरि (व्याख्याकार एम0एल0 शर्मा)
10	याज्ञवल्क्यस्मृति	याज्ञवल्क्य (मिताक्षरा टीका)